विदा

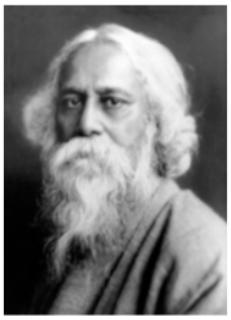

रविंद्रनाथ टैगोर

विदा

कन्या के पिता के लिए धैर्य धरना थोड़ा-बहुत संभव भी था; परन्तु वर के पिता पल भर के लिए भी सब्र करने को तैयार न थे। उन्होंने समझ लिया था कि कन्या के विवाह की आयु पार हो चुकी है; परन्तु किसी प्रकार कुछ दिन और भी पार हो गये तो इस चर्चा को भद्र या अभद्र किसी भी उपाय से दबा रखने की क्षमता भी समाप्त हो जायेगी? कन्या की आयु अवैध गति से बढ़ रही थी, इसमें किसी को शंका करने की आवश्यकता बड़ी नहीं; किन्तु इससे भी बड़ी शंका इस बात की थी कि कन्या की

तुलना में दहेज की रकम अब भी काफी अधिक थी। वर के पिता इसी हेतु इस प्रकार से जल्दी मचा रहे थे।

मैं ठहरा वर अपितु विवाह के विषय में मेरी राय से अवगत होना नितान्त व्यर्थ समझा गया। अपनी कर्त्तव्यपरायणता में मैंने भी किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने दी, यानी एफ.ए. पास करके छात्रवृति का अधिकारी बन बैठा। परिणाम यह निकला कि मेरे सम्बन्ध में श्री प्रजापति के दोनों ही पक्ष, कन्या पक्ष और वर पक्ष बार-बार बेचैन होने लगे।

हमारी जन्म-भूमि में जो पुरुष एक बार विवाह कर लेता है, उसके मन में दूसरी बार विवाह करके रचनात्मक कार्यों में कोई जिज्ञासा या उद्वेग नहीं होता एक बार नर-मांस का स्वाद लेने पर उसके प्रति बाघ की जो मन की दशा होती है, नारी के विषय में बहुत कुछ वैसी ही हालत एक बार विवाह कर लेने वाले पुरुष के मन की भी होती है।

एक बार नारी का अभाव घटित हुआ, कि फिर सबसे पहला प्रयत्न उस अभाव को पूर्ण करने के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए इस बार उसका मन दुविधा में नहीं रहता, कि भावी पत्नी की आयु क्या है और कैसी है उसकी अवस्था?

मैं देखता हूं कि सारी दुविधा और दुश्चिंता का ठेका आजकल के लड़कों के ही नाम छूटा है। लड़कों की ओर से बारम्बार विवाह का प्रस्ताव होने पर उनके पिता पक्ष के चांदी के समान श्वेत केश खिजाब की महिमा से बारम्बार श्याम-वर्ण को अपना लेते हैं और उधर बातचीत की तप्ताग्नि से ही लड़कों के श्याम केश, मारे चिन्ता, परेशानी के रात के कुछ घंटों में ही उठने का उपक्रम करते हैं।

आप विश्वास कीजिए, मेरे मन में ऐसा कोई विषय या उद्वेग का श्रीगणेश नहीं हुआ; अपितु विवाह के प्रस्ताव से मन मयूर बसन्त की दक्षिण पवन की शीतलता में नृत्य कर उठा। कौतूहल से उलझी हुई कल्पना की नई आई हुई कोंपलों के बीच मानो गुपचुप कानाफूसी होने लगी। जिस विद्यार्थी को एडमण्ड वर्के की फ्रांसीसी क्रान्ति की घोर टीकाओं के पांच-सात पोथे जबानी घोटने हों, उसके मन में इस जाति के भावों का उठना निरर्थक ही समझा जाएगा। यदि टेक्सट बुक कमेटी के द्वारा मेरे इस लेख के पास होने की लेशमात्र भी शंका होती, तो सम्भवत: ऐसा कहने से पूर्व ही सचेत हो जाता।

परन्तु मैं यह क्या ले बैठा? क्या यह भी ऐसी कोई घटना है? जिसे लेकर उपन्यास लिखने की योजना बना रहा हूं। मेरी योजना इतनी शीघ्र आरम्भ हो जाएगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। प्रबल आकांक्षा थी कि वेदना के जो कजरारे मेघ गत कई वर्षों से मन में छा रहे हैं उन्हें किसी बैशाखी संध्या की तूफानी वर्षा के वेग द्वारा बिल्कुल ही निष्प्राण कर दूंगा। पर न तो बच्चों की पाठ्य-पुस्तक ही लिखी गई, क्योंकि संस्कृत का व्याकरण मेरे मस्तिष्क से अछूता रह गया था और न काव्य ही रचा जा सका; क्योंकि मातृभाषा मेरे जीवन युग में ऐसी फली-फूली नहीं थी जिसके द्वारा मैं अपने हृदय के राज को बाहर प्रकट कर पाता। अत: देख रहा हूं कि मेरे अन्तर का संन्यासी आज अपने अट्टहास से अपना ही परिहास करने के लिए बैठा है। इसके अतिरिक्त वह करे भी तो क्या? उसके अश्रु शुष्क जो हो गये हैं। जेठ की कड़कड़ाती धूप वस्तुत: जेठ का अश्रु शून्य क्रन्दन ही तो है।

जिसके साथ विवाह हुआ था, उसका वास्तविक नाम नहीं बताऊंगा, क्योंकि आज ब्रह्मांड के पुरातत्व-वेत्ताओं में उसके ऐतिहासिक नाम के विषय में विशेष विवाद होने की शंका नहीं है। जिस ताम्र-पत्र पर उसका नाम अंकित है, वह मेरा ही हृदय है। वह पट और पत्नी का नाम किसी युग में भी विलुप्त होगा, यह सोचना मेरी कल्पना से बाहर है। परन्तु जिस सुनहरी दुनिया में वह अक्षय बना रहा, वहां इतिहास के विद्वानों का आना-जाना नहीं होता है। इस पर भी मेरे इस लेख में उसका कुछ-न-कुछ नाम तो चाहिए ही, अच्छा तो समझ लीजिए शबनम उसका नाम था, क्योंकि शबनम में मुस्कान और रुदन दोनों घुल-मिलकर एकाकार हो जाती है और भोर का संदेश प्रभाव बेला तक आते ही चुक जाता है।

शबनम मुझसे केवल दो ही वर्ष छोटी थी। मेरे पिता गौरी दान से विमुख हों, सो यह बात नहीं थी। उनके पिताजी कट्टर समाज-विद्राही थे? देश में प्रचलित किसी भी धर्म के प्रति उनमें श्रध्दा न थी। उन्होंने खूब कसकर बांग्ला भाषा का अध्ययन किया था। मेरे पिता उग्र भाव से समाज के अनुयायी थे। जिसे अंगीकार करते हुए किंचित-मात्र भी अड़चन हो, ऐसी किसी भी वस्तु की हमारे समाज की विशाल डयोढ़ी या अन्त:पुर में या पिछली राह पर झलक देख पाना सम्भव न था। इसका भी कारण यही कि उन्होंने भी कसकर बांग्ला भाषा का अध्ययन किया था। पितामह और पिताजी के विभिन्न रूप क्रान्ति की दो विभिन्न मूर्तियां थीं। कोई भी सरल स्वभाव का नहीं। फिर भी बड़ी आयु वाली कन्या के साथ मेरा विवाह करना पिता ने इसलिए स्वीकार कर लिया कि उसकी इस बड़ी-सी आयु की दोनों मुट्ठियों में दहेज की रकम भी बहुत बड़ी थी।

शबनम मेरे श्वसुर की एकमात्र कन्या थी। पिताजी को पूर्ण विश्वास था कि कन्या के पिता का सारा धन भावी दामाद भविष्य के उदर की परिपूर्ण करने वाली है। मेरे श्वसुर को किसी मत-मतान्तर का झमेला नहीं था? पश्चिम की किसी पहाड़ी रियासत के नरेश के यहां किसी उच्च पद पर थे? शबनम जब गोद में ही थी, तभी उसकी मां के प्यार का आंचल उस पर से उठ गया था। इस बात की ओर उसके पिता का ध्यान भी नहीं गया कि पुत्री प्रति वर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही है। वहां उनके समाज का कोई ऐसा ठेकेदार नहीं था, जो उनके नेत्रों में अंगुली डालकर इस सच्चाई को उनके हृदय में बिठा देता।

शबनम ने यथा समय उम्र के 16 वर्ष पार किए; किन्तु वे स्वाभाविक 16 वर्ष के थे, सामाजिक नहीं। किसी ने उसे यौवन के प्रति सचेत होने का परामर्श नहीं दिया और न ही उसने स्वयं उस ओर देखा? मैंने उन्नीसवें वर्ष में कॉलिज के तृतीय वर्ष में पग रखा। ठीक तभी मेरा विवाह हो गया। समाज या समाज के ठेकेदार के मत से वह आयु विवाह के उपयुक्त है या नहीं, इस विषय में दोनों पक्ष लड़-भिड़कर चाहे खून खराबा कर बैठे; किन्तु मैं तो निवेदन के साथ यही कहना चाहता हूं कि परीक्षा पास करने के हेतु यह आयु जिस प्रकार ठीक है, विवाह करने के लिए भी उससे किसी प्रकार कम नहीं।

विवाह का सूत्रपात एक चित्र के द्वारा हुआ था। उस दिन मैं पढ़ाई-लिखाई में सिर गढ़ाये बैठा था कि मेरे साथ परिहास का सम्बन्ध रखने वाली किसी आत्मीया ने मेरे सम्मुख टेबुल पर शबनम का चित्र लाकर रख दिया और कुछ पल शान्ति के साथ बिताकर कहा, "लो, अब झूठ-मूठ की पढ़ाई को बन्द करके सचमुच की पढ़ाई करो। एकदम जी तोड़कर परिश्रम में लगाने वाली पढ़ाई।" चित्र किसी अनाड़ी चित्रकार द्वारा खींचा गया था। कन्या के मां नहीं थी, अत: उस दीर्घ श्याम केशों को बांध-संवार कर जूड़े में जरी गूंथकर कलकत्ते की प्रसिध्द शाह या मालिक कम्पनी की भद्दी, तंग जैकेट पहनाकर दूसरे पक्ष के नेत्रों में धूल झोंकने का बरबस प्रयत्न नहीं किया गया था। केवल एक सरल भरा हुआ चेहरा था, मृगी-सी दो आंखें ओर सीधी-सादी एक साड़ी। तब भी पता नहीं क्यों कोई अपूर्व महिमा, सौन्दर्य उसे घेरे हुए था। किसी भी एक चौकोर चौकी पर वह बैठी हुई थी। पीछे आवरण के स्थान पर एक धारीदार शतरंजी झूल रही थी। पास में तनिक-सी ऊंची तिपाई पर ही फूलदानी में फूलों के सुन्दर गुलदस्ते दीख रहे थे। ईरानी कालीन पर साड़ी की तिरछी किनार के किंचित अनाबध्द दो कोमल खाली पैर। चित्र की उस रूप-सुधा को जैसे ही मेरे मन के जादू का स्पर्श मिला कि वह मेरे अन्तरतम में जाग उठी।

वे दोनों कजरारी आंखें मेरे सारे चिन्तन को चीरकर मुझ पर जाने कैसे अनोखे भाव से आकर स्थिर हो गईं और उस तिरछी किनार के निम्न भाग के दोनों अनावृत्त पगों ने मेरे अन्तर परयांसन पर बरबस अपना घर बना लिया।

पत्रे की तिथियां आई-गई हो गईं। विवाह के दो-तीन लग्न भी बीत गये; किन्तु मेरे श्वसुर को छुट्टी मिलने का नाम भी नहीं। इधर कुछ मास से मेरे देखते-देखते एक अकाल मेरी इतनी बड़ी अविवाहित उम्र को फिजूल ही उन्नीसवें वर्ष की ओर धकेलने का प्रयास कर रहा था। श्वसुर और उनके अधिकारियों पर मुझे खीझ होने लगी।

विवाह का दिन ठीक अकाल की पूर्व लग्न पर ही आकर पड़ा। उस दिन की शहनाई की हर तान आज मुझे स्मरण हो रही है। उस दिन के प्रति मुहूर्त को मैंने चेतनता के साथ स्पर्श किया था। मेरी यह उन्नीस वर्ष की आयु मेरे जीवन में सदैव रहे, मैं उसे कदापि नहीं भुला सकूंगा।

विवाह-मंडप में चहुंओर कोलाहाल-सा फैला हुआ था। उसी के बीच कन्या का कोमल हाथ मैंने अपने हाथों में पाया। मुझे स्पष्ट तरीके से याद है कि यही मेरे जीवन की एक परम आश्चर्यजनक घटना है। मेरे मन ने बारम्बार यही कहा- "इसे मैंने पाया है, हासिल किया है; किन्तु किसे? यह तो दुर्लभ है। यह नारी है, इसके रहस्य का क्या कभी ओर-छोर पाया जा सकता है?"

मेरे श्वसुर का नाम गौरीशंकर था। जिस हिमाचल पर वे उच्च पदाधिकारी थे, उसी हिमाचल के मानो मोती थे। उनके गम्भीरता के शिखर पर क्षेत्र में कोई प्रशान्त स्वच्छ हंसी उज्ज्वल होकर छाई हुई थी। उनके हृदय के स्नेह-स्रोत का संधान जिसने भी एक बार लिया, उसने फिर कभी उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करने की चेष्टा नहीं की।

काम पर लौटने से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाकर कहा- "बेटा, अपनी बच्ची को 17 वर्ष से जानता हूं और तुम्हें अभी कुछ दिनों से, इस पर भी सौंपा तुम्हारे ही हाथों में है। जो निधि आज तुम्हें मिली है, किसी दिन उसका मूल्य भी परख सको, इससे बढ़कर आशीर्वाद मेरे पास नहीं।"

मेरे माता-पिता ने उन्हें बारम्बार आशा भरे शब्दों में कहा- "समधीजी! कुछ चिन्ता न करना। तुम्हारी पुत्री जैसे पिता को छोड़कर आई है। वैसे ही यहां माता-पिता दोनों पाये ऐसा ही समझिये।"

शबनम से विदा होते समय वे हंसकर बोले- "बिटिया चल दिया। इस बूढ़े पिता को छोड़ तेरा कौन अपना रहा है? आज से यदि इसका कुछ भी गुम हो जाये, तो इसके लिए मुझे जिम्मेवार न ठहराना।" शबनम ने उत्तर दिया- "क्यों नहीं, यदि कभी इतनी-सी चीज भी गुम हो गई तो आपको सारी हानि भरनी पड़ेगी।"

अन्त में घर रहते हुए जिन विषयों पर बहुधा ही झंझट खड़े हो जाते थे, उनसे उसने पिता को बार-बार सचेत कर दिया। भोजन के विषय में अनियम का उन्हें खासा अभ्यास था। कुछ विशेष प्रकार के अपथ्य भोजन पर उनकी विशेष रुचि थी। पिता को उन सारे प्रलोभनों से यथासम्भव दूर रखना बेटी का विशेष कर्त्तव्य था। इसी से वह पिता का हाथ पकड़कर बोली- "बाबूजी! क्या मेरी एक बात रखेंगे?" पिता ने प्रफुल्लित मन से कहा- "मानव इसलिए वचन देता है, कि एक दिन उसे भंग कर चैन की सांस ले सके। इससे वचन न देना ही श्रेयस्कर है।"

फिर वह कुछ न बोली और पिता के चले जाने पर उसने कमरे के द्वार बन्द कर लिये इसके बाद की घटना का बखान अन्तर्यामी ही कर सकते हैं। पिता-पुत्री की अश्रुहीन विदाई का दृश्य पार्श्व के कक्ष की चिर-कौतूहली अंत:पुरिकाओं ने देखा, सुना और आलोचना की- "कैसी अजीब बात है भला? रूखी-सूखी जमीन पर रहते-रहते इन लोगों का हृदय भी सूखकर कांटा हो गया है। माया-ममता का चिन्ह लेशमात्र भी नहीं रहा। राम! राम! राम!"

मेरे श्वसुर के मित्र बनमाली बाबू ने ही हमारी बातचीत पक्की की थी। वे हम लोगों के परिवार से भलीभांती परिचित थे। वे मेरे श्वसुर से बोले- "बेटी को छोड़कर तो तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं है। यहीं इनके पास ही कोई मकान लेकर जिन्दगी के शेष दिन काट डालो।"

उत्तर मिला- "जब दान दिया है, तो नि:शेष करके ही दे डाला है। फिर लौट-लौटकर निहारने से उसकी पीड़ा बढ़ेगी। जिस अधिकार को एक बार त्याग चुका, उसे बार-बार बनाये रखने के प्रयत्न से बढ़कर विडम्बना और क्या होगी?"

अन्त में मुझे एकान्त में ले जाकर किसी अपराधी की तरह सकुचाते हुए बोले- "बिटिया को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है और लोगों को खिलाना-पिलाना उसे बहुत अच्छा लगता है। यदि बीच-बीच में तुम्हें रुपये-पैसे भेज दिया करूं, इससे वे नाराज तो नहीं होंगे?"

सुनकर मुझे तनिक आश्चर्य हुआ। कारण जीवन में कभी किसी भी ओर से धनराशि मिलने पर पिताजी नाराज हुए हों, उनका ऐसा बिगड़ा मिजाज तो मैंने कभी नहीं देखा? जो हो, मेरे श्वसुर मानो मुझे घूस दे रहे हों कुछ ऐसे ही भाव से मेरे हाथों में सौ रुपये का एक नोट थमा कर, वे वहां से चटपट चल दिए। मैंने देखा, इस बार जेब से रूमाल निकलाने की बारी आ ही गई। स्तब्ध होकर मैं विचारों में खो गया। मैंने अनुभव किया कि ये लोग बिल्कुल ही अन्य जाति के मानव हैं।

अपने सहपाठियों में कितनों ही को तो विवाह करते हुए देखा है। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ-ही-साथ स्त्री को एकबारगी कंठ के निम्न भागों में उतार लेते हैं। हजम करने के यंत्र तक पहुंचने पर थोड़ी देर के बाद वह पदार्थ अपने गुणों एवं अवगुणों का हल कर सकता है और इसके फलस्वरूप हृदय के भीतर चिन्ता बनकर हचचल भी आरम्भ हो सकती है। सो होती रहे; परन्तु निगलने के रास्ते में इससे कोई रुकावट नहीं पड़ती।

किन्तु मैंने विवाह-मंडप में ही समझ लिया था कि पाणिग्रहण के मंत्र द्वारा जिसे प्राप्त किया जाता है, उससे घर-गृहस्थी तो भली-भांति चल जाती है; परन्तु उसके हृदय को पूर्णरूपेण पाना पन्द्रह आना बाकी रह जाता है। मुझे सन्देह है कि विश्व के अधिकांश पुरुष पत्नी को ठीक-ठाक पाते हैं या उनको समझते हैं। वे स्त्री को ब्याह कर ले आते हैं, किन्तु उपलब्ध नहीं कर पाते और न कभी उन्हें इस बात का एहसास हो पाता है कि उन्होंने पाया कुछ भी नहीं। उनकी पत्नियां भी मृत्यु काल तक इस कटु सत्य से अवगत नहीं हो पातीं। लेकिन मैंने ऐसा अनुभव किया कि वह मेरी साधना की निधि है। वह अचल संपत्ति नहीं, सम्पदा है, अगाध रत्नराशि है।

शबनम, नहीं इस नाम से काम नहीं चलेगा। एक तो यह कि वह उसका वास्तविक नाम नहीं और न यह उसका यथार्थ परिचय है। वह तो दिवाकर की तप्त रश्मि है, क्षयकालीन उषा की विदा बेला के अश्रुओं का बिन्दु नहीं। नाम को गोपनीय रखकर ही आखिर क्या होगा? उसका वास्तविक नाम था...हेमन्ती।

मैंने देखा, सत्रह वर्ष की इस सुन्दरी पर यौवन का पूरा आलोक बिखरा हुआ है। तब भी इस अवस्था की गोद में भी उसे चेतनता नहीं मिली है। हिमाच्छादित शिखर पर भोर का उजाला तो झलक उठा है; किन्तु हिम अभी तक गल नहीं पाया है। कैसी निष्कलंक शुभ्र है वह, कैसी पवित्र की प्रतिमा, यह मैं ही जानता हूं, मेरे मन में बराबर यह शंका बनी रहती थी इतनी पढ़ी शिक्षित लड़की का मन पता नहीं, क्योंकर पा सकूंगा? किन्तु कुछ ही दिवसों के उपरान्त मैंने जान लिया कि उसके मन की राह

और शिक्षा की राह आपस में कहीं कटी ही नहीं है। कब उसके सरल-शुभ्र मन पर हल्की-सी रंगीनी छा गई नेत्र अलस तन्द्रा में झूम उठे और देहमन मानो उत्सुक हो उठे, सो निश्चिन्तता के साथ कह देना मेरे लिए कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है?

यह तो हुई एक पक्ष की बात; लेकिन अब दूसरा पक्ष भी है। वह और उसके विषय में पूर्णरूप से कहने का समय अब आ पहुंचा है?

मेरे श्वसुर राज दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। इसलिए उनकी कितनी धनराशि बैंक के खातों में है, इस सम्बन्ध में जनश्रुति ने बहुत तरह के अनुमान बिठाये थे। इनमें से किसी भी अनुमान की संख्या लाख के आंकड़ों से नीचे नहीं पड़ती थी। फलस्वरूप एक ओर पिता के प्रति सम्मान बढ़ता गया, तो दूसरी ओर इकलौती बेटी की ओर स्नेह। हमारी घर-गृहस्थी का काम-धंधा और तौर-तरीका जानने के लिए हेम खूब उत्सुकता दिखला रही थी। किन्तु मां ने उसे अगाध स्नेह दिखाने के अभिप्राय: से किसी काम में हाथ नहीं लगाने दिया? यहां तक कि मायके से हेम के साथ जो पहाड़िन मेहरी आई थी, उसे उन्होंने वास्तव में अपने कक्ष में नहीं घुसने दिया, फिर भी उसकी जाति-पांति के बारे में किसी प्रकार का अपवाद नहीं किया? वे डरती थीं कि विशेष छान-बीन करने पर कहीं कोई अरुचिकर सत्य न सुनना पड़े।

दिन इसी तरह कट जाते; लेकिन एक दिन पिताजी का मुंह घोर गंभीर दिखाई दिया। बात यह थी कि मेरे श्वसुर ने मेरे विवाह में 15 सहस्र रुपये नकद और पांच सहस्र के आभूषण दिए थे। इधर पिताजी को किसी कृपापात्र दलाल से पता चला कि यह धनराशि कर्ज लेकर जुटायी गई थी; जिसका ब्याज भी कुछ मामूली न था और लाख रुपये की अफवाह तो बिल्कुल उड़ाई हुई थी।

वास्तव में मेरे विवाह के पूर्व श्वसुर की संपत्ति के परिणाम के विषय में पिताजी ने भी उनकी कोई आलोचना नहीं की थी। तब भी न जाने किसी तर्क-पध्दति से आज उन्होंने यह बिल्कुल पक्का निश्चय कर लिया था कि उनके समधी ने जान-बूझकर यह धोखा उनके साथ किया है। इसके अलावा पिताजी की यह धरणा थी कि मेरे श्वसुर राजा के मुख्यमंत्री या उसी समान किसी उच्च पद के अधिकारी हैं। पीछे पता चला कि वे वहां के शिक्षा विभाग के अध्यउक्ष हैं। पिताजी ने टीका की- अर्थात् विद्यालय के मुख्याध्यासपक, विश्व में जितने भी भद्र पद हैं, उनमें सबसे ऊंचा है। पिताजी ने बड़ी-बड़ी आशाएं कर रखी थीं कि आज नहीं तो कल, श्वसुर के अवकाश प्राप्त करने पर राज मंत्री के पद पर वे स्वयं ही प्रतिष्ठित होंगे।

इन्हीं दिनों के कार्तिक मास में रामलीला के उपलक्ष्य में हमारा जन्मभूमि का सारा परिवार कलकत्ते वाली हवेली में आ जुटा है। वधू को देखते ही उनमें एक छोर से दूसरे छोर तक कानाफूसी की लहर दौड़ गई। क्रमश: अस्फुट हुई। दूर के नाते से सम्बन्धित नानी ने कहा- "आग लगे मेरे भाग्य को, नई बहू ने तो उम्र में मुझे भी हरा दिया।"

सुनकर नानी की समवयस्का बोल उठी-"अरै हमें न हरायेगी, तो हमारा बच्चा विदेश से बहू लाने ही क्यों जाएगा?"

मां ने उग्रता के साथ उत्तर दिया- "भैया रे! यह क्या बात हो रही है? बहू ने अभी ग्यारह पार नहीं किए, यही अगले फाल्गुन में बारह में पांव धरेगी। पछुहुआ देस में दाल-भात खा-खाकर बड़ी हुई है बेचारी, सो देह तनिक अधिक सम्भल गई है।"

वृध्दाओं ने शान्त अविश्वास के साथ उत्तर दिया- "सो बिटिया रानी, इतनी कमजोर तो हमारी निगाह अभी नहीं हुई है। हमारे ख्याल में तो लड़की वालों ने जरूर उमर कुछ दबाकर बताई है।"

मां ने कहा- "हम लोगों ने तो जन्म-पत्री देखी है।"

"बात सच है, किन्तु जन्म-पत्री से ही तो प्रमाणित होता है कि बहू की उम्र सत्रह है।"

वृध्दाओं ने कहा- "सो जन्म-पत्री में क्या धोखा-धड़ी नहीं चलती?" इस बात पर घोर वाद-विवाद छिड़ गया। यहां तक कि संघर्ष की नौबत आ गई। उसी क्षण वहां हेम आ पहुंची। उन दोनों वृध्दाओं में से एक ने उसी से पूछा- "बहू रानी! तुम्हारी उमर क्या है, बताओ तो भला?" मां ने आंखों से संकेत किया; परन्तु हेम उनका मतलब नहीं समझी, बोली- "सत्रह।" मां तिलमिला उठी। उसने उसी अवस्था में कहा- "तुम्हें मालूम नहीं है। "हेम विरोध का प्रदर्शन करती हुई बोली- "मुझे ठीक मालूम है। मेरी उम्र सत्रह है।"

वृध्दाओं ने गुपचुप एक-दूसरे के हाथ दबाये। बहू की मूर्खता पर खीझ कर मां बोली- "तुम्हें तो सब मालूम है। लेकिन तुम्हारे बाबूजी ने हम से खुद कहा है कि तुम्हारी उमर ग्यारह है।"

सुनकर हेम चौंक उठी, बोली- "बाबूजी ने! कभी नहीं।"

मां ने कहा- "तुमने तो चकित कर दिया है। समधीजी स्वयं मेरे सामने कह गये थे और बिटिया कहती है, कभी नहीं।" यह कहकर मां ने आंख से फिर संकेत किया। अब की बार हेम संकेत समझ गई; लेकिन उसने कंठ को और भी मजबूत करके कहा, "बाबूजी! ऐसी बात कभी नहीं कह सकते।"

मां ने स्वर को धीमा करके कहा- "तू क्या मुझे झूठा ठहराना चाहती है?" हेम ने फिर वही दुहराया- "बाबूजी कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद मां जितना भी अपवाद फैलाने लगी, उतनी ही कालिमा फैलकर सबको एकाकार लीपने-पोतने लगी। इतना ही नहीं, मां ने नाराज होकर पिताजी के सम्मुख अपनी बहू की मूढ़ता और जिद्दीपन की शिकायत रखी। पिताजी ने उसी क्षण हेम को बुलाकर धमकाते हुए कहा, "इतनी बड़ी अविवाहित कन्या की अवस्था सत्रह वर्ष की थी, वह कन्या के लिए कोई बड़प्पन की बात है, जो उसका ढिंढोरा पीटती फिरोगी? हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा, कहे देता हूं।"

हाय रे भाग्य, बहु रानी के प्रति पिताजी का यह मधु मिश्रित पंचम स्वर इस प्रकार उस्ताद बाजखां के घोर षडज तक कैसे उतर आया?

हेम ने व्यथित होकर पूछा- "यदि कोई उम्र जानना चाहे तो क्या उत्तर दूं?"

पिताजी बोले- "झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं। कह दिया करो, मुझे नहीं पता, मेरी सास, मां जानती हैं। "इसके बाद झूठ किस तरह बताया जाता है, इसका सारा उपदेश सुनने के बाद, हेम कुछ इस तरह चुप हो गई कि पिता जी को यह समझना बाकी न रहा कि उसका सारा सदुपदेश बिल्कुल चिकने घड़े पर पानी की तरह पड़ा।

हेम की दुर्गति पर दु:ख क्या प्रकट करूं, उसके समक्ष तो मेरा मस्तक ही नत हो गया। मैंने देखा शारदीया प्रभात के आकाश की तरह उसके नेत्रों की वह सरल उदार दृष्टि मानो किसी संशय की छाया से म्लान हो उठी? भीत मृगी की तरह मानो उसने मेरे मुख की ओर देखा और सोचा, मैं कदाचित इन्हें नहीं पहचानता।

उस दिन मैं एक सुन्दर जिल्द वाली अंग्रेजी कविताओं की एक पुस्तक क्रय करके उसके लिए ले आया था। उसने पुस्तक को अपने सुन्दर हाथों से थामा, फिर धीमे-से गोद में रखकर एक बार भी खोलकर नहीं देखा। मैंने उसके दायें हाथ को अपने हाथों में लेकर कहा- "हेम, मुझ पर नाराज न होना, मैं तो तुम्हारे सत्य के बन्धन में बंधा हुआ हूं।"

सुनकर वह कुछ न बोली, केवल तनिक मुस्करा दी। सृष्टिकर्ता ने वैसी ही मुस्कान जिसे दी है उसे और भी कुछ कहने की आवश्यकता ही कहां?

इधर पिताजी की आर्थिक तरक्की के कुछ दिनों बाद से सृष्टिकर्ता के उस अनुग्रह को चिर-स्थायी कर रखने के स्वार्थ से हमारे यहां नए उत्साह से पूजा-पाठ चल रहा था। आज तक कभी भी पूजा-अर्चना में बहू की कभी भी बुलाहट नहीं हुई। अचानक नई वधू को पूजा का थाल सजाने का आदेश मिला। वह बोली- "मां! मुझे समझा दो, कैसे क्या करना होगा?"

प्रश्न कुछ ऐसा न था, जिसे सुनकर किसी के सिर पर आसमान टूट पड़ता, यह तो सब लोग भली प्रकार जानते थे कि मातृहीना हेम प्रवास में ही इतनी बड़ी हुई है। तब भी इस उद्देश्य का आशय तो केवल हेम को लज्जित करना ही था। सो सभी ने अपने गाल पर हथेली रखकर कहा- "हाय मैया, यह भला कैसी बात है? आखिर किस नास्तिक के घर की बेटी है? बहू घर की लक्ष्मी अब इस गृहस्थी से विदा होने ही वाली है? देरी मत समझना" और इसी प्रसंग में हेम के पिता को लक्ष्य करके न जाने कितनी अकथनीय बातें की गईं?

कटु आलोचना की हवा जब से चलनी आरम्भ हुई थी, तब से हेम आज तक बराबर चुप रहकर सब सहन करती आ रही थी। कभी पल भर के लिए भी उसने किसी के सामने अश्रु न बहाये? परन्तु आज तो उसकी बड़ी-बड़ी आंखों को प्लावित करती हुई अश्रुओं की झड़ी लग गई। वह खड़ी होकर बोल उठी- "आपको मालूम है, वहां मेरे बाबूजी को सब लोग ऋषि कहते हैं।"

ऋषि मानते हैं, सुनकर उपस्थित लोगों ने पेट भरकर दिल के गुबार निकाले। इस घटना के उपरान्त जब कभी उसके पिता का उल्लेख करना होता, तो सब लोग यही कहते, "तुम्हारे ऋषि बाबूजी।" इस बहू का सबसे मर्म का स्थान कौन-सा है? इसे हमारे यहां सबने अच्छी प्रकार समझ लिया था। वास्तव में मेरे श्वसुर ब्राह्मण थे और न ईसाई, और बहुत करके नास्तिक भी नहीं, पूजा-अर्चना की बात कभी उनके ध्यान में ही नहीं। बेटी को उन्होंने शिक्षित बनाने का प्रयत्न अवश्य किया था। कितने ही उपदेश भी दिये थे; किन्तु सृष्टिकर्ता के सम्बन्ध में कोई उपदेश नहीं दिया? इसी बारे में पूछने पर उन्होंने इतना ही कहा- "जिस विषय को मैं स्वयं नहीं जानता उसे सिखलाना केवल कपट ही होगा।"

ससुराल में हेम की एक सचमुच की भक्तिन थी, मेरी छोटी भगिनी नारायणी, वह अपनी भाभी को बहुत स्नेह करती थी, उसके लिए उस बेचारी को काफी प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। घर में हेम के अपमान की कहानी मुझे उसी से सुनने को मिलती थी। हेम के मुंह से कभी किसी दिन भी सुनने को नहीं मिला? लज्जा का आवरण उसके अपने लिए नहीं था, अपितु मेरे लिए ही था। बाबूजी के पास से वह जो पाती वह मुझे पढ़ने के लिए दे देती। ये पत्र छोटे होने पर भी रस से भरपूर होते थे। वह स्वयं भी उनको जब कभी पत्र लिखती तो मुझे अवश्य दिखा देती। बाबूजी के साथ उसका जो नाता था, उसमें अपने साथ मुझे भी बराबर का भागी बनाये बिना उसका दाम्पत्य पूर्ण जो नहीं हो पाता। उसके इन पन्नों में ससुराल के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत का आभास मात्र भी नहीं? यदि होता, भावी आशंका की सम्भावना थी, कारण नारायणी से मैंने सुन लिया था कि जांच के लिए बीच में उसके पत्र गोपनीय रीति से खोल लिये जाते हैं। इन पत्रों में उसका कोई भी दोष सिध्द न होने से ऊपर वालों का मन शान्त हो, सो बात नहीं; बल्कि आशा टूटने का दु:ख ही सम्भवत: उन्हें ज्यादा टीसा करता था। इसलिए उन्होंने चिढ़कर कहना शुरू कर दिया कि आखिर इतनी जल्दी-जल्दी पत्र डालने की ही भला कौन-सी जरूरत है? मानो बाबा ही सब कुछ हैं। हम लोग क्या कोई नहीं?" और इसी प्रकार की अनेक अरुचिकर बातों का तांता शुरू हो गया। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा- "तुम बाबूजी को पत्र लिखती हो, वह किसी और को न देकर मुझे ही दे दिया करो, कॉलिज जाते समय राह में छोड़ दिया करूंगा।"

चकित होकर हेम ने कहा- "क्यों?"

मैंने संकोचवश कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु हवेली में सबने कहना आरम्भ कर दिया कि अब लड़के के सिर चढ़ना शुरू हुआ है। बी.ए. की उपाधि अब ताक पर धारी रहेगी। आखिर उस बेचारे का भला दोष ही क्या है?

सो तो है ही! दोष किसी का है तो वह बेचारी हेम का। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की है; वह उसका पहला दोष है। सृष्टिकर्ता का विधान ही ऐसा है, यह भी हेम का तीसरा दोष है। इसलिए तो मेरे हृदय के अणु-अणु में समस्त आकाश इस तरह की बांसुरी की तान साधे हुए है।

बी.ए. की उपाधि को निर्विकार भाव से मैं चूल्हे में फूंक सकता था; किन्तु हेम के कल्याण के लिए मैंने प्रण किया कि मैं अवश्य उत्तीर्ण होऊंगा और अच्छे अंकों से। दो कारणों से मुझे अपने प्रण को पूरा कर पाने का भरोसा था। एक तो हेम के अगाध

स्नेह में ऐसा आकाशव्यापी विस्तार था कि वह मन को संकीर्ण, आसक्ति में फंसाकर नहीं रहती। उस स्नेह के आस-पास कोई खूब ही स्वास्थ्यवर्ध्दक वायु बहा करती थी। दूसरे परीक्षा की पुस्तकें कुछ ऐसी थी; जिन्हें हेम के साथ-साथ पढ़ना असम्भव न था। सो मैं कमर कसकर परीक्षा पास करने के उद्योग में जुट गया।

एक दिन रविवार की दुपहरिया में बाहर के कमरे में बैठा हुआ मैं मार्टिन की आचारशास्त्रावली पुस्तक की खास-खास पंक्तियों के मध्य के पथ को चीरते हुए लाल पेन्सिल का हल चलाये जा रहा था कि अचानक सामने की ओर मेरी दृष्टि जा पहुंची कमरे के सामने आंगन के उत्तर की ओर अन्त:पुर को जाने के लिए एक जीना था इसी बंद जीने में बाहर की तरफ सींकचेदार खिड़कियां थीं। मैंने देखा कि हेम उन्हीं में किसी एक खिड़की के पास पश्चिम की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी है। उस ओर मल्लिक की बगिया है जिसमें कचनार का पेड़ गुलाबी पुष्पों के भार को सम्भाले खड़ा हुआ है। इस भाषाहीन गहरी वेदना के रूप को आज तक इतने सुस्पष्ट भाव से मैंने नहीं देखा था। खास कुछ भी नहीं, अपने कमरे में से मैं किंचित पीछे की ओर दीवार के सहारे टिके उसके सिर के भंगी भाव भली-भांति देख पा रहा था। मेरा अपना जीवन इस तरह लबालब भर गया था कि किसी प्रकार की भी कोई शून्यता मैंने आज तक देखी ही नहीं थी। आज अकस्मात अपने बिल्कुल ही पार्श्व में मैंने किसी बहुत निराशा का घना गढ़ा देखा था। इस तलहीन गर्त को मैं क्योंकर, कैसे पूरा कर सकूंगा? मुझे तो जीवन में कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ा। न घर, न द्वार और न आज तक किसी प्रकार का अभ्यास ही; लेकिन हेम को तो सभी कुछ छोड़कर और दूर चल कर मेरे पास आना पड़ा। इसका परिणाम कितना अधिक है, सो मैंने भली-भांति सोचा भी नहीं?

हमारे घर में अपमान के कांटों की सेज पर वह बैठी है। उसको हमने आपस में विभक्त कर लिया है। उस वेदना के आसव को हम दोनों ने एक साथ ही पिया था। इसलिए हम दोनों एक-दूसरे के निकट थे। परन्तु हिमाचल में पली हुई यह गिरि नन्दिनी सत्रह वर्ष की लम्बी अवधि तक अपने बाह्य और अन्त:जीवन में कैसी विशाल युक्ति के मध्य पली थी? कैसे कठोर सत्य और उदार आलोक में उसकी छवि एवं प्रकृति इस प्रकार स्वच्छ और सबल हो चुकी है? उस सारे वैभव से आज हेम का नाता किस प्रकार निष्ठुरता के साथ तोड़ दिया गया है, इस बात का, आज से पूर्व मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया था? कारण उस स्थान पर हेम के साथ मेरा आसन बराबरी का न था। वह तो अन्दर-ही-अन्दर पल-पल तिल-तिल करके मृतप्राय-सी होती जा रही थी। उसे मैं सब दे सकता था; किन्तु मुक्ति नहीं, मुक्ति मेरे अपने

अन्तर में ही कहां है? इसी हेतु कलकत्ता की इस संकरी गली में खिड़की के सींकचों के भीतर से मूक आकाश के साथ उसके मूक मन की बातचीत हुआ करती।

किसी दिन रात को उठकर मैंने देखा, वह बिछौने पर नहीं है। हाथों पर सिर को थामकर तारों से भरपूर आकाश की ओर मुंह उठाये वह छत पर लेटी है।

मार्टिन का चरित्रता का बखान वहां पड़ा रह गया। मैं सोचने लगा कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? बाल्यकाल से ही पिताजी के साथ मेरे सम्बन्ध में मेरे संकोच की सीमा न थी। समक्ष होकर कभी उनसे किसी वस्तु के लिए प्रार्थना करने की न तो मेरी आदत ही थी और न साहस ही; किन्तु आज मुझसे न रहा गया। लाज और संकोच को ताक पर धरकर मैं उनसे कह ही बैठा- "उसकी तबीयत आजकल कुछ अच्छी नहीं है, सो एक बार बाबूजी के यहां भेज देना ही अच्छा होगा।"

सुनकर पिताजी चकित रह गये। उनके मन में इस बात का तनिक भी संदेह न रहा कि हेम ने ही मुझ में इस अभूतपूर्व साहस का बीजारोपण किया है और अच्छी प्रकार से सिखा-पढ़ा कर यहां भेजा है। वे तत्काल ही उठकर अन्त:पुर में गए और हेम से पूछा-"बहू! तुम्हें क्या नई बीमारी है, बताना तो भला?"

हेम ने सिर झुकाकर उत्तर दिया- "कहां, बीमारी तो कुछ भी नहीं है।"

पिता ने सोचा, उत्तर तेज दिखाने के लिए है। किन्तु हेम जो प्रतिदिन सूखती जा रही थी, सो नित्यप्रति देखते रहने के कारण हम लोग समझ नहीं पाते थे।

एक दिन बनमाली बाबू ने उसे देखा तो चौक पड़े। वे बोले- "ऐं, यह क्या? तेरा मुख ऐसा कैसा हो गया है हेम? बीमार तो नहीं हो?"

हेम ने कहा- "नहीं।"

परन्तु इस घटना के दस दिन बाद ही अकस्मात मेरे श्वसुर आ पहुँचे। अवश्य ही बनमाली बाबू ने हेम की तबीयत की बात लिखी होगी?"

विवाह के उपरान्त पिता से विदा लेते हुए हेम ने अपने अश्रु रोक लिये थे; किन्तु आज जैसे ही उन्होंने उसकी ठोड़ी छूकर मुंह ऊपर को उठाया तो अश्रुओं का बांध टूट गया। उसकी भीगी पलकों ने सब-कुछ बता दिया। वह बाबूजी को मुख से आधी बात भी न कह सकी। वे इतना भी न पूछ पाये कि तू कैसी है? बेटी की क्षीण गति, म्लान मुख और पलकों को देखते ही उनकी छाती टूक-टूक हो गई।

हेम बाबूजी का हाथ पकड़कर उन्हें शयन-कक्ष में ले गई। कितनी बातें तो पूछने की हैं, बाबूजी की तबीयत भी तो ठीक नहीं दिखाई देती।

हेम बाबूजी के साथ मायके जाने के लिए उद्यत हो गई। बनमाली बाबू ने भी समधीजी से इस बात का संकेत किया। लेकिन अन्ततः बात पिताजी की हो रही और उसके आगे हेम की आकांक्षा कुचल दी गई।

बाप-बेटी को विदा करने की बेला फिर एक बार आ पहुंची। बेटी ने नीरव और शुष्क मुस्कान को पीले मुख पर डालते हुए कहा-"बाबूजी! यदि फिर कभी आपने मेरे लिए पागलों की भांति बेतहाशा दौड़ते हुए इस हवेली में कदम रखा तो मैं दरवाजा बन्द कर लूंगी।"

बाबूजी ने उसी मुद्रा में उत्तर दिया- "बेटी! भाग्य में फिर आना लिखा तो साथ में सेंध लगाने के औजार भी लेता आऊंगा।"

इसके बाद हेम के मुख की वह मुस्कान फिर कभी देखने को नहीं मिली।

फिर क्या हुआ सो मुझसे कहा नहीं जायेगा।

सुनता हूं, मां फिर उपयुक्त वधू की खोज में है। सम्भव है किसी दिन मां के अनुरोध की अवहेलना मुझसे न हो सके। यही मुमकिन है; क्योंकि खैर छोड़िये इन भेद भरी बातों की।